P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-2* October- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

विभिन्न वैयाकरणों के मत में लिङर्थ लकार

कृष्ण राम
सहायक अध्यापक,
संस्कृत विभाग,
इन्द्रिरा गाँधी नेशनल कॉलेज,
लाडवा, कुरुक्षेत्र, हरियाणा

सारांश

आचार्य पाणिनि ने वाक् की व्यावहारिक व्याख्या के लिए अष्टाध्यायी नामक विशाल ग्रन्थ में 'लकार' की कल्पना की है क्योंकि लकारों के परिज्ञान के बिना संस्कृतभाषाव्यवहार की कल्पना सम्भव नहीं है। आख्यात पद का स्वरूप भी लकार की व्याख्या के बिना स्पष्ट नहीं हो सकता। अतः पाणिनि द्वारा लडादि दश लकारों को अष्टाध्यायी में प्रदर्शित किया है जिनमें से 'लट्, लिट्, लुट्, लृट्, लङ, लुङ तथा लृङ आदि सात लकार स्पष्टतया काल वाचक हैं, जो सामान्यतः वर्तमान, अनद्यतन परोक्षभूत, अनद्यतन भविष्यत् सामान्य भविष्य्, अनद्यतनभूत, सामान्यभूत तथा भूत एवं भविष्यत् कालिक हेतुहेतुमद्भाव के बोधक हैं।

मुख्य शब्द : वैयाकरणों, व्यावहारिक व्याख्या।

प्रस्तावना

लिङ् लकार को विध्यादि छः अर्थों का सूचक बताया है। लिङ् के अर्थों में प्रयुक्त होने वाले लकारों को लिङर्थक लकार अथवा विध्यर्थक लकार कहा जाता है। आचार्य पाणिनि ने विध्यादि अर्थों में लेट्, लोट् और लिङ् लकार का विधान किया है। लेट् लकार का प्रयोग केवल वैदिक भाषा में ही हुआ है। भट्टोजिदीक्षित ने पञ्चमलकार लेट् को छन्दोमात्रागोचर कहा है।[1] लिङर्थेलेट् [2] इस सूत्र के द्वारा अष्टाध्यायी में लिङ् के अर्थ में लेट् हो ऐसा विधान किया है। कौण्डभट्ट लिङ्का अर्थ विधि आदि ही स्वीकार करते हैं। नागेशभट्ट भी कौणभट्ट से सहमत है।[3] विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाधीष्ट सम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् सूत्र में विहित विध्यादि छः अर्थों में लिङ् लकार का प्रयोग होता है इन्हीं विध्यादि अर्थों में लेट् लोडादि लकारों का प्रयोग पाणिनि सम्मत कौण्डभट्ट, नागेशेभट्टादि परवर्ती वैयाकरणों ने किया है

साहित्यावलोकन

निरुक्तकार यास्क ने आख्यात का लक्षण 'भावप्रधानमाख्यातम्' प्रस्तुत किया है अर्थात् जहां क्रिया की प्रधानता हो वह आख्यात है आख्यातपदों की सुव्यवस्था तथा सम्यक् विभाजन के लिए ही व्याकरण शास्त्र में दश लकारों की कल्पना की गई है। इन दश लकारों को लेकर पाणिनी द्वारा विरचित व्याकरण के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ अष्टाध्यायी में सूत्रवद्धक्रम से उल्लेख उपलब्ध है। साहित्य अवलोकन की दृष्टि से निम्नलिखित शोध प्रबन्ध लकारार्थ विवेचन को स्वीकार करके किये गये है –

1. अलङकार, वीरेन्द्र कुमार, संस्कृत व्याकरण में लकारार्थ विवेचन पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़। 1998
2. झा, रवीन्द्रनाथ, लकारार्थ एक अध्ययन, 'वैयाकरणभूषणसार के विशेष सन्दर्भ में', लघु शोधप्रबन्ध दिल्ली विश्वविद्यालय, 1990
3. हरीश, धात्वर्थ निर्णय एवं धात्वर्थ निरूपण का तुलनात्मक अध्ययन दिल्ली विश्वविद्यालय, 1994

शोध पत्र का उद्देश्य

संस्कृत व्याकरण के क्षेत्र में दशलकारों से लेकर विविध विद्वानों ने व्याख्यान प्रस्तुत किया है । लकारों के स्थान पर तिबादि अठारह प्रत्ययों का विधान भी पाणिनिशब्दानुशासन में सुव्यवस्थित ढंग से किया गया है।

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य लिङर्थ के लिए प्रयुक्त लकार एवं लिङ्विधायक सुत्रों को प्रस्तुत करना है। विधिलिङ् लकार के अतिरिक्त अन्य लकारों को भी लिङ.र्थ के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। इस विषय का स्पष्टीकरण ही शोध पत्र का प्रमुख उद्देश्य है। जिसकों मुख्य बिन्दु रखकर शोधपत्र का लेखन किया गया ।

लिङ् लकार का अर्थविवेचन

आचार्य पाणिनि ने विशाल ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' में लकारार्थ–विवेचन करते हुए लिङ् लकार का विभिन्न अर्थों में विधान किया है तथा लिङ् लकार के इन दो भेदों का मुख्यतः प्रतिपादन हुआ है विधिलिङ् तथा आशीर्लिङ।

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-2* October- 2018
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

विधि लिङ् का अर्थ

महर्षि पाणिनि ने स्वकीय प्रसिद्ध ग्रन्थ अष्टाध्यायी में विधिनिमन्त्राणामन्त्रणाधीष्ट–सम्प्रश्न–प्रार्थनेषु लिङ् इस सूत्र के द्वारा विधि आदि छः अर्थों में लिङ् लकार का विधान किया है। ये अर्थ हैं–

1. विधि
2. निमन्त्रण
3. आमन्त्रण
4. अधीष्ट
5. सम्प्रश्न और
6. प्रार्थना।

इन छः अर्थों में 'विधि' की प्रमुखता होने के कारण इस लकार को विधि लिङ् लकार के नाम से जाना जाता है।

आशीलिङ् का अर्थ विवेचन

लिङ् लकार का भेद आशीर्लिङ् भी स्वीकृत किया गया है। पाणिनि आशिषि लिङ् लोटौ सूत्र के द्वारा आशीः अर्थ में लिङ् एवं लोट् लकार का विधान करते हैं। यहाँ 'आशीः' का अर्थ प्रधानता अथवा आर्शीवाद होने के कारण इस को आशीर्लिङ संज्ञा दी गई है। वस्तुतः किसी भी प्रकार के अभीष्ट की प्राप्ति ही आशी का प्रमुख अर्थ है। नागेश भट्ट के अनुसार आशी का अर्थ शुभ की इच्छा करना है।[8] काशिका के अनुसार अभीष्ट को प्राप्त करने की इच्छा[9]

'आशंसनमाशीः अप्राप्तस्येष्टस्यार्थस्य प्राप्तुमिच्छा'

यथा 'त्वं यशस्वी भूयाः'

नैयायिकों के अनुसार विधि आदि शब्दों से वक्ता की अध्येषणा, अनुज्ञा,सम्प्रश्न, प्रार्थना और आशंसा – इन विविध प्रकार की इच्छाओं से भिन्न कोई अर्थ प्रतिभासित हुआ नही माना जाता। [10]

लोट् लकार

पाणिनि द्वारा अष्टाध्यायी में लोट लकार सम्बन्धित दो सूत्रों का विधान किया है। लोट् च एवं आशिषि लिङ् लोटौ ये दोनों सूत्र अष्टाध्यायी के तृतीय अध्याय में उल्लिखित हैं। व्याख्याकारों ने 'लोट्' के अनेक अर्थों को स्पष्ट किया है यथा भीमाचार्य ने लोट् के अनुमत्व, अनुज्ञा, आज्ञा समर्थना, विधि निमन्त्रण, आमन्त्रण अधीष्ट प्रार्थना तथा आशंसन इन ग्यारह अर्थों का उल्लेख किया है [11]

विधि तथा आशी अर्थ में साक्षात् ही 'लिङ् ' तथा 'लोट्' का विधान किया गया है अतः लिङ् तथा लोट् दोनों समानार्थक लकार हैं। कौण्डभट्ट ने 'वैयाकरणभूषणसार' में लोट् एवं लिङ् को समान अर्थ का प्रतिपादक माना है।[12]

'लोडर्थमाह प्राथनादाविति। आदिना विध्याद्याशिषौ' गृह्यन्ते आशिषि लिङ् लोटौ लोट् च इति सुत्राभ्यां तथाऽवगमात् ।।

'स्वर्गकामो यजेत' तथा 'स्वर्गकामो यजताम्' ये दोनों ही लिङ् तथा लोट् लकार के प्रयोग विध्यादि अर्थ में साधु माने जाते हैं। इन दोनों लकारों के अर्थो में कुछ अन्तर प्रतीत होते हुए भी कौण्ड भट्ट लिङ् तथा लोट् दोनों लकारों को मूल अर्थों में पूर्णतः समान मानते है यथा 'स्वर्गकामो यजताम्' अतः लोट् लकार का प्रयोग लिङ्र्थक मानना औचित्य अपूर्ण है।

लेट् लकार; लिङ्र्थक लेट् लकार

लेट् लकार का अर्थ विवेचन करने से पहले या अष्टाध्यायी के निम्न सूत्रों का सूक्ष्म रूप से अध्ययन करना अत्याधिक आवश्यक है।

'लिङर्थे लेट्'[13] एवं 'छान्दसि लुङ्लङ्लिटः' ;3.4.6 इन दो सूत्रों का विधान पाणिनि ने लेट् लकार के लिङ्र्थक प्रयोग को स्पष्ट करने के लिए किया है। इस सूत्र का सामान्य अर्थ यह होगा वेद में लिङ् के अर्थ में लेट् लकार का प्रायोग होता है। लिङ् अर्थ विधि आदि है अतः लेट् लकार का अर्थ भी विधि आदि है। यथा नागेश ने कहा है

'लेट्लिङ्स्तु विध्यादिरर्थः'[14]

नागेश भट्ट ने इस सूत्र को 'छन्दसि लिङर्थे लेट्' इस प्रकार से दर्शाया है। कौण्डभट्ट का विचार भी इनके विचारों से सहमत है। वे भी लेट् लकार का प्रयोग लिङ्र्थ में ही स्वीकार करते हैं।

इस तथ्य को 'वैयाकरणभूषणसार' में इस तरह से स्पष्ट करते हैं।

लोडर्थमाह – विध्यादाविति। 'लिङर्थे लेट्' सूत्रात् लिङर्थश्च विध्यादिः।

भट्टोजिदीक्षित ने भी लेट् 'वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी' में लकार को छान्दस मात्र माना है।

'पंचमो लकारश्छन्दोमात्र गोचरः'[16]

लेट् लकार के प्रयोग वैदिक साहित्य में विशेषतः वैदिक संहिताओं तथा ब्राह्मणादि ग्रन्थों में उपलब्ध होता है।

लेट् लकार का प्रयोग तब ही विध्यादि अर्थ में होता है जब यद्–सर्वनाम शब्द का प्रयोग वैदिक वाक्य में अथवा वैदिक मन्त्र में न हो। अभिप्राय यह है कि लेट् लकार के अर्थ के विधि आदि की अभिव्यक्ति शब्द के प्रयुक्त होने पर नहीं होती।

यथा–

'समिधे यजति'

अतः इस वाक्य में 'यद्' शब्द का प्रयोग न होने के कारण यहां पर लेट् लकार का प्रयोग विधि आदि अर्थ में हुआ है। 'समिधाओं की पूजा करें' इस अर्थ की दृष्टि यहां पर होती है। जो कि लिङर्थक सूचक है। परन्तु जहाँ यद् (सर्वनाम) शब्द का प्रयोग लेट् लकार के साथ होता है वहाँ पर लेट् का अर्थ विधि आदि लिङर्थ न होकर अन्य अर्थों का द्योतक होता है।

यथा –

'देवान् च याभिर्यजते ददाति च' जिनसे देवों की पूजा करता है तथा दान देता है। 'यद्' सर्वनाम इस वाक्य में प्रयोग होने हेतु इसका अर्थ विधि–आदि न होकर लिङतिरिक्त लडादि हुआ।

लेटस्तु यच्छब्दा समभिव्याहृतस्य एवं विधिरर्थः समिधे यजति इत्यादौ विधि प्रत्ययात्। देवांश्च याभिर्यजते ददाति च। प.ल. म. 31[1]

(1) घनो तत्रां जया अपः। (2) स देवाँ एह वक्षति (3) इमं नः श्रृणवद् हवम् (वृत्रा को मारो, जल को प्राप्त करो।) वह अग्नि देवो के यहाँ लाए। (वह हमारी पुकार को सुने)

इन सभी तथ्यों का अध्ययन करने के पश्चात् यह स्पष्ट होता है कि वेदों में प्रयुक्त लेट् लकार लिङर्थक–विधि–आदि अर्थों में प्रयोग होता है। पाणिनि के 'लिङर्थे लेट्' इस सूत्र की सार्थकता सिद्धि होती है। कौण्डभट्ट इस मत के

साथ पूर्णतः सम्मत स्थापित करते हुये स्वकीय रचना 'वैयाकरणभूषणसार में स्पष्ट रूप से इस मत की पुष्टि करते हैं।[17]

'अग्नि रयिमश्नवत् ;अग्नि के द्वारा वह धन को प्राप्त करें।

लिङर्थविधयक सूत्र

आशंसावचने लिङ् (3.3.137)

आशंसावाची शब्द उपपद हो तो धातु से लिङ् प्रत्यय होता है।[18] अप्राप्त प्रिय पदार्थ को प्राप्त करने की इच्छा को आशंसा कहते हैं।[19]

वासुदेवदीक्षित ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है– आशंसा का अर्थ है प्राप्तीच्छा।[20] यहां भूतकाल के असंभव होने का कारण भविष्यत्काल की प्राप्ति होती है। यह सूत्र 'आशंसायां भूतकाल के असंभव होने के कारण भविष्यत्काल की प्राप्ति होती है। यह सूत्र का अपवाद है जिसमें कहा गया है कि आशंसा गम्यमान होने पर धातु से भूतकाल के समान तथा वर्त्तमानकाल के समान भी विकल्प से प्रत्यय हो जाते हैं।[21] इसीलिए वृत्ति में भी कहा गया है 'न तु भूतवत्। इस उदाहरण से इस प्रकार स्पष्ट किया है – गुरूजी यदि आयेंगे तो आशा है कि पढ़ेंगे। क्षिप्र के योग में भी परत्व से लिङ् ही होता है लृट् नहीं होता ऐसा कहा है। 'ज्ञानेन्द्रभिक्षु ने भी अपनी टीका में कुछ ऐसी ही व्याख्या प्रस्तुत की है।'[22]

जातुयदोर्लिङ् (3.3.147)

इस सूत्र पर कात्यायन की वार्तिक है– अनवक्लृप्ति अमर्ष अभिधेय हो तो जातु तथा यद् उपपद रहते धातु से लिङ् प्रत्यय होता है। पक्ष में 'वोताप्योः सूत्र से लिङ् भी होगा। अत्यक्ष्यत् इत्यादि रूप बनेंगे।[23]

वासुदेवदीक्षित ने अपनी टीका में कहा है – जातु और यत् इन दोनों के प्रयोग में अनवक्लृप्ति और अमर्ष अर्थ में लिङ् होवे यह अर्थ है। यद् यह विभक्ति प्रतिरूपक अव्यय है अनवक्लृप्ति अमर्ष तथा अकिंवृत्त में भी लिङ् तथा लृट् प्राप्त है, परन्तु लिङ् का प्रयोग ही यहां हो इसलिए सूत्र बनाया है। वार्तिक का अर्थ है कि 'यदा और यदि के प्रयोग अर्थ में भी उक्त विषय में लिङ् होवे।' उदाहरण देते है। – तुम्हारे जैसा हरि की निन्दा करे ऐसा मैं सहन नहीं कर सकता हूँ। नावकल्पयामि का अर्थ है, न संभावयामि।[24]

इसी की व्याख्या में हरदत्त ने कहा है – 'प्रकृत सूत्र लृट् का अपवाद है। अनवक्लृप्त्यादि सूत्र द्वारा लिङ् और लृट् दोनों के प्राप्त होने पर लिङ् ही होवे लृट् न हो यह अर्थ है।'[25]

यच्चयत्रयोः (3.3.148)

अनवक्लृप्ति अमर्ष गम्यमान हो तो यच्च, यत्रा ये अव्यय उपपद रहते धातु से लिङ् प्रत्यय होता है। पक्ष में लिङ् भी होगा।[26]

ज्ञानेन्द्रभिक्षु ने इसकी व्याख्या में कहा है– अनवक्लृप्ति तथा अमर्ष की अनुवृत्ति आ रही है।[27] 'नागेश्भट्ट ने भी ऐसी ही व्याख्या प्रस्तुत की है।'[28]

चित्रीकरणे च (3.3.150)

आश्चर्य गम्यमान हो तो भी यच्च यत्र उपपद रहते धातु से लिङ् प्रत्यय होता है। भूत क्रियातिपत्ति विवक्षा में पक्ष में लृङ भी होगा।[29] ज्ञानेन्द्रभिक्षु ने कहा है– 'अयमपि कालत्राये लृङ प्राग्वत्। यच्च यत्र वा त्वं शूद्रदयाजयिष्य', आश्चर्यमेतत्।[30] पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु ने उदाहरण दिया है– बुद्धिमान और सज्जन होते हुए भी जो आप वेदविद्या की निन्दा करते हैं, यह आश्चर्य है।'[31]

उताप्योः समर्थयोलिङ् (3.3.152)

उत, अपि समानार्थक उपपद हो तो धातु से लिङ् प्रत्यय होता है। बाढम् = हां, अर्थ में उत अपि समानार्थक होते हैं।[32]

बालमनोरमा में सूत्र की व्याख्या निम्न प्रकार से की गई है– शकन्धवादिगण के होने के कारण पररूप संज्ञा है यहाँ उत और अपि एकार्थक है ऐसा अर्थ किया गया है किस अर्थ को लेकर इनकी एकार्थता है इस पर कहते हैं – 'बाढम् अर्थ लेकर। और बाढार्थक उत, अपि दोनों के प्रयोग में लिघ हो, अन्य लकार न हों ऐसा अर्थ है। उदाहरण देते है उत हन्यादधं हरिः, अपि हन्यादधं हरिः, ऐसा अन्वय है। यहां उत और अपि बाढार्थक हैं। 'उत दण्डः पतिष्यति', यहां उत शब्द से प्रश्न गम्यमान है। 'अपिधास्यति द्वारम्' यहां अपि से धातु प्रच्छादनार्थक है। 'वोताप्योः' वहां मर्यादा अर्थ में आङ का प्रयोग हुआ है। उताप्यो इत्यादि सूत्रें में लिङ् निमित्त लृङ लकार होता है, ऐसा अधिकार किया गया है। और 'उताप्योः सूत्र से लेकर लिङ् निमित्त क्रियातिपत्तौ में भूतकाल में लृङ लकार हो ऐसा अधिकार किया गया है। यहां वा का ग्रहण नहीं है अतएव नित्य हो लृङ् होगा।[33]

कामप्रवेदने कच्चिति (3.3.153)

कच्चिज्जीवति अपने अभिप्राय का प्रकाशन करना गम्यमान हो और कच्चित् शब्द उपपद में न हो तो धातु से लिङ् प्रत्यय होता है। काम का अर्थ है – इच्छा, तथा प्रवेदन का अर्थ है– प्रकाशन। उदाहरण – मेरी इच्छा है कि आप भोजन करें।[34]

नागेशभट्ट ने इस सूत्र की टीका में लिखा है– यह सभी लकारों का अपवाद है। 'अकच्चिति' के प्रयोग का अर्थ है क्वचित् शब्द के प्रयोग का अभाव। कच्चिजीवतीति, ये प्रश्न ही कामप्रवेदन का द्योतक है। कच्चित् शब्द के इच्छार्थक न होने के कारण 'इच्छार्थेषु' इस सूत्र की प्रवृत्ति नहीं होती।[35]

हरदत्त के अनुसार – 'अपने अभिप्राय को प्रकट करना कामप्रवेदन है। किसी को पृथक्–पृथक् पदों के द्वारा अर्थ का उपपादन करना। काम का अर्थ इच्छा है। 'माराविद त्वां पृच्छामि', इसमें माराव शब्द उपपद होने पर दा धातु से 'क प्रत्यय किया गया है। यह शुकविशेष की संज्ञा है, उसको हाथ में रखकर कोई लालन–पालन कर रहा है। यह अर्थ है।'[36]

विभाषा धातौ सम्भावनवचनेयदि (3.3.155)

पूर्व सूत्र की अनुवृत्ति है। सम्भावन अर्थ को कहने वाला धातु उपपद हो तो यत् शब्द उपपद न होने पर सम्भावन अर्थ में वर्तमान धातु से विकल्प करके लिङ् प्रत्यय होता है। यदि अलम् शब्द का अप्रयोग सिद्ध हो। सम्भावना भविष्यत्काल विषयवाली होती है, अतः पक्ष में सामान्य भविष्यत्काल का प्रत्यय लृट् हो गया है।[37]

वासुदेवदीक्षित ने टीका में कहा है– यदि ऐसा विग्रह है। संभावयामि इति उदाहरण का यह अभिप्राय है– प्रायः खाने में समर्थ है। इसी को हरदत्त ने पदमञ्जरी में

इस प्रकार कहा है– 'भोजन करने में आप समर्थ हैं, ऐसी उत्प्रेक्षा है।'[38]

हेतुहेतुमतोलिङ् (3.3.156)

हेतु और हेतुमत्। अर्थ में वर्तमान धातु से लिङ् प्रत्यय विकल्प से होता है।[39] वार्तिककार अनुसार – इस सूत्र की भवष्यित्काल में ही प्रवृत्ति अभीष्ट है।' कारण को हेतु तथा कार्य को हेतुमत् कहते हैं। यहां पूर्वसूत्रों से लिङ् की अनुवृत्ति आने पर भी पनुः लिङ् का ग्रहण इस बात का द्योतक है कि यह लिङ् किसी विशेष काल में ही होता है। लिङ् के अभाव में भविष्यत्सामान्य में 'लृट्शेष च' सूत्र से लृट् हो जायेगा। यथा – यदि वह कृष्ण को नमस्कार करेगा तो सुख पायेगा। यहां 'कृष्ण को नमस्कार करना' हेतु तथा 'सुख को पाना' हेतुमत् है। अतः हेतुमत् भाव में नम् और या दोनों धातुओं से लिङ् होकर यह वाक्य निष्पन्न हुआ हैं। पक्ष में भविष्यत्सामान्य में लृट् का प्रयोग होगा यथा कृष्णं नंस्यति चेत् सुखं यास्यति। हेतुहेतुमद्भाव में लिङ् भविष्यत्काल में ही आता है अन्य कालों में नहीं। यथा – हन्तीति पलायते (वह मारता है, इसलिए दूसरा भागता है।) यहां पर मारना हेतु तथा भागना हेतुमत् है। परन्तु वर्तमानकाल में स्थित होने से लिट् का प्रयोग न होकर लट् का प्रयोग हुआ है।

ज्ञानेन्द्रभिक्षु ने व्याख्या इस प्रकार की है– प्रस्तुत उदाहरण में सुख प्राप्ति हेतु है भविष्यत् लिङ् की अनुवृत्ति होने पर पुनर्लिङ् ग्रहण काल विशेष के ज्ञान के लिए है।[40] इस सूत्र से हन् धातु से शतृ प्रत्यय होवे, यह अर्थ है।[41]

इच्छार्थेषु लिङ्लोटौ (3.3.157)

इच्छार्थक धातुओं के उपपद रहते लिङ् तथा लोट् प्रत्यय होते हैं। यथा–इच्छामि भुञ्जीत भवान्। वार्तिक के अनुसार कामप्रवेदन ऐसा कहना चाहिए। यथा कामये भुञ्जीत भवान्। कामये भुङ्क्तां भवान्।[42]

हरदत्त इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं– 'कामप्रवेदना इति वक्तव्यम्' यह वार्तिक है तो फिर 'अकच्चिति ऐसा कयों कहा है? जबकि कामो में भुञ्जीत भवान्, अभिलाषो में भुञ्जीत भवान, यहां पर भी इसी सूत्र से सिद्ध हो जायेगा जहाँ पर इच्छार्थक उपपद नहीं होता है, वहां अर्थप्रकरणादि से कामप्रवेदन मालूम पड़ता है तो वहां पर भी लिङ् हो जाया करे। यह सूत्र फिर किसलिए है? फिर कहते हैं 'लोट् के लिए है अर्थात् लिङ् के ग्रहाण से लोट् का बाध न हो इसलिए है।[43]

नोगशभट्ट भी इस प्रकार की व्याख्या प्रस्तुत करते हैं – 'यह सभी लकारों का अपवाद है। लिङ् लकार का प्रयोग पूर्ववत् होगा। इच्छार्थक धातु के उपपद रहते लिङ् लोट् होते हैं, यह सूत्रर्थ हैं कामप्रवेदन का अर्थ अपने अभिप्राय का प्रकटीकरण है। यह स्वतंत्रा विधायक नहीं है अपितु सूत्र के शेषभूत अन्य का व्यावर्तक है, इसलिए जहां लिङ् लोट् नहीं होते है, वहां प्रयोग दर्शाया गया है।[44]

इच्छार्थेभ्यो विभाषा वर्त्तमाने (3.3.160)

इच्छार्थक धातुओं से वर्तमान काल में विकल्प से लिङ् प्रत्यय होता है। पक्ष में वर्तमान काल का लट् प्रत्यय भी होता है।[45]

बालमनोरमा (वासुदेवदीक्षित कृत) में इसकी व्याख्या निम्न प्रकार से की गई है– लिङ् की ये अनुवृत्ति है। 'समानकर्तृकेषु' की निवृत्ति हो चुकी है। इसको सुचित करने के लिए उदाहरण देते हैं– इच्छेत इच्छतीति। 'विधि निमन्त्रणामन्त्रणाधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्' यह सूत्र पूर्व व्याख्यायित है। फिर भी सूत्र क्रम प्राप्ति के कारण स्मरण कराया गया है। 'लोट् च' सूत्रे विध्यादि अर्थों में विहित लोट् के भी उदाहरण ऐसे ही समझने चाहिए।[46]

लिङ् यदि (3.3.168)

काल समय, वेला शब्द और यत् शब्द उपपद हो तो धातु से लिङ् प्रत्यय होता है। समय है कि आप भोजन करें।[47]

नागेशभट्ट के अनुसार– काल समय और वेला की अनुवृत्ति है यद् भवान् भुञ्जीत, उसका काल है, यह उदाहरण का अर्थ है भाव में परत्व से यह तुमुन् को बाधता है, इसलिए सब लकारों का अपवाद है। 'ज्ञानेन्द्रभिक्षु ने भी यही मत प्रस्तुत किया है।[48]

शकि लिङ् च (3.3.172)

यदि धातु के अर्थ की शक्तता गम्यमान हो तो धातु से लिङ् और कृत्य प्रत्यय हो जाते हैं। तुम भार उठा सकते हैं।[49]

वासुदेवदीक्षित ने अपनी टीका में कहा है– 'शक्' यह भाव में क्विबन्त प्रयोग है भार ढोने में तुम समर्थ हो यह अर्थ है। यह सब लकारों का अपवाद है। इस प्रकार होने पर मा भवतु, मा भविष्यति, ऐसा प्रयोग है, यह शङ्का है।[50] इसका समाधन करते हैं– 'यह माङ् नहीं अपितु घकार अनुबन्ध से रहित 'मा' है। 'नागेशभट्ट ने भी कुछ ऐसे ही विचार प्रस्तुत किये हैं।'[51]

आशिषि लिङ्लोटौ (3.3.173)

'आशीर्वाद अर्थ में लिङ् और लोट् प्रत्यय होते हैं।'[52]

ज्ञानेन्द्रभिक्षु ने इसकी व्याख्या निम्न प्रकार से की है – विध्यादि सूत्र में ही सम्प्रश्न, प्रार्थना, आशीः इत्यादि कहे गये हैं, फिर पृथक् सूत्र की क्या आवश्यकता है। इस पर कहते है– 'यहां क्विच्क्तौ च' इस उत्तर सूत्र के लिए 'आशिषि' ये वचन आवश्यक हैं। स्मे लोट् इत्यादि अपने विषय में परत्व से बाधक हो जाये। सिद्धान्त में तो परत्व से ही विधि स्मे लोट् इत्यादि का बाधक है।[53]

हरदत्त ने इसकी व्याख्या में कहा है– विधयादि सूत्र में ही आशीर्ग्रहण नहीं किया है, स्मे लोट् इत्यादि विषय में भी परत्व से यह विधि हो जाया करे। और अवश्य ही उत्तरार्थ आशीः ग्रहण करना चाहिए।[54]'नागेशभट्ट ने आशीः का अर्थ इष्टप्राप्तीच्छा दिया है।'[55]

उपर्युक्त विवेचन में लिङर्थकलकारों पर विस्तृत चर्चा की गई है। विधि आदि के अर्थ में लिङ्, लोट् एवं लेट् आदि लकारों का प्रयोग पाणिनी ने अष्टाध्यायी में किया है। 'विधिनिमन्त्रणामन्त्राधीष्टसम्प्रश्नप्रार्थनेषु लिङ् '[56] (विधि–निमन्त्रणा–आमन्त्रा–अधीष्ट–सम्प्रश्न–प्रार्थना) इन छः अर्थों में लिङ् का विधान किया गया है। इन सभी अर्थों में प्रवर्तना को प्रमुख्य रूप से स्वीकार किया गया है। अर्थात् लिङ् लकार का शक्य प्रवर्तना ही है और शक्यता अवछेदक है प्रवर्तनात्व। अतः विध्यादि चारों में अनुगत प्रवर्तनात्व को ही लिङ् का शक्यतावच्छेदक माना

जाता है। अतः सूत्र में विधि आदि भेद प्रदर्शन की कोई आवश्यकता नहीं, यही लाघव है। इस समस्या के समाधन हेतु भर्तृहरि की रचना वाक्यपदीय की दो कारिकाओं को कौण्डभट्ट वैयाकरणभूषण में उद्धृत करते हैं। जिसमें प्रथम कारिका प्रश्नात्मक है एवं द्वितीया समाधनात्मक है।

1. अस्तिप्रवर्तनारूपमनुस्यूतं चतुर्ष्वपि।
   तत्रौ लिङ् विधातव्यः किम्भेदस्य विवक्षया।।
2. न्यायव्युत्पादनार्थं वा प्रपंचार्थमथापि वा।
   विध्यादीनामुपादानं चर्तुणामादितः कृतम्।।[57]

अर्थात् विध्यादि भेदों का प्रयोग सूत्र में युक्ति युक्त है। इसका स्पष्टीकरण कौण्डभट्टद्व भर्तृहरिकृत उपर्युक्त कारिका के माध्यम से करते हुए कहते हैं कि पाणिनि ने सूत्र में न्याय के व्युत्पादनार्थ एवं प्रपंच के लिए विधयादि भेदों का प्रयोग किया है। जो औचित्यपूर्ण है। पाणिनि के अष्टाध्यायी में 'आशीषि लिङ् लोटौ' इसके आधार पर आशीः एवं विध्यादि अर्थों में लोट् का प्रयोग होता है। कौण्डभट्ट ने वैयाकरणभूषण में लोट् एवं लिङ् के समान अर्थ का प्रतिपादन किया है। 'लोट् च' सूत्र के च के प्रयोग का अर्थ विध्यादि किया गया है।[58]

लोडर्थमाह प्रार्थनादाविति। आदिना विध्याद्याशिषो–गृह्यन्ते 'अशिषि लिङ् लोटौ' 'लोट् च' इति सूत्राभ्याम् तथावगमात्।।

अर्थात् लिङ् के विध्यादि अर्थों में लोट् का प्रयोग होता है। इसके अतिरिक्त लेट् लकार का लिङर्थक विवेचन करने के लिए लिङर्थे लेट्[57] एवं 'छन्दसि लुङ्लङ्लिटः' इन सूत्रों के आधार पर लेट् का अर्थ भी लिङर्थ के समान माना जाता है।

'लेट्तिङस्तु विध्यादिरर्थः।'[58]

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन में लिङ् विधायक सूत्रों का भिन्न–भिन्न वैयाकरणों के मत में व्याख्यान प्रस्तुत किया गया है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी में उपर्युक्त सूत्रों के अतिरिक्त लिङ् के अर्थ में अन्य सूत्रों की भी रचना की है। अष्टाध्यायी के इन सूत्रों पर वैयाकरणसिद्धान्तकौमुदी, तत्त्वबोधिनी, बालमनोरमा एवं परम लघुमञ्जूषा, पदमञ्जरी आदि ग्रन्थों को आधर बनाकर विचार किया गया है। ये सूत्र लिङर्थक विधायक सूत्रों के रूप में कथित हैं। इन सूत्रों में भिन्न–भिन्न अर्थों में लिङ् लकार के प्रयोग को स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है ।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. *पंचमो लकारश्छन्दोमात्रागोचरः। वै.सि.कौ.*
2. *लिङर्थे लेट। पा.अ.– 3.4.7*
3. *वै.भू. पृ. 72 क लेटोऽर्थमाह–विध्यादिद्ध ख प.ल. पृ. 253 लेट्तिङस्तु विध्यादिरर्थः*
4. *पा.अ. 3.3.161*
5. *क प.ल.म., पृ. 292, लिङो विधिराशीश्चार्थः*
   ख न्यायकोश, पृ. 708 लिङ् द्विविध विधिलिङ् आशीलिङ् चेतिद्ध।
6. *पा.अ. सूत्र संख्या– 3.3.161*
7. *का. पा.3.3.173*
8. *प.ल.म.–पृ. 292*
9. *का., पृ.137*
10. *न्या.कु.म., पृ.801*
11. *न्या.को., पृ.720–21*
12. *वै.भू.पृ.52*
13. *पा.अ. 3.4.8*
14. *प.ल.म. – पृ. 253*
15. *वै.भू.सा.– पृ. 52*
16. *वै.सि.कौ. पृ. 4*
17. *प.ल.म. पृ.–310*
18. *वै.भू.सा. – पृ. 4*
19. *'आशंसावचिन्युपपदे भविष्यति लिङ् स्यान्न भूतवत्। गुरूश्चेदुपेयादाशंसेऽधीयीय आशंसे क्षिप्रमधीयीय।' सि.कौ. पृ. 288*
20. *'अप्राप्तस्येष्टपदर्थस्य प्राप्तुमिच्छा आशंसा।' अ. भा. प्र. पृ. 472*
21. *'आशंसायाः प्राप्तीच्छाया भूते असंभवाद्भविष्यति इति लक्ष्यत। आशंसायां भूतवच्चेत्यस्यापवादः। तदाह– न तु भूतवदिति। गुरूः चेदिति। गुरूरूपेयाच्चेत् क्षिप्रमधीयीयेत्याशंसे इत्यन्वयः। क्षिप्रप्रयोगेऽपि परत्वाल्लिङे.व न तु लृड़िति भावः।' बा.म. पृ. 366*
22. *'आशंसायां भूतवच्च' प.अ. सूत्र 3–3–132*
23. *'भूतवत् वर्तमानवत्प्रत्ययोरपवादः। न भूतवदिति। न वर्तमानवदित्यपि बोध्यम्। आशंसेऽधीयीयेति। एवं प्रार्थये अधीयीय, इच्छामो वयमधीयीमहीत्यादि ज्ञेयम्। क्षिप्रमिति। क्षिप्रयोगेऽपि परत्वाल्लिङ् इति भावः।' त. बो. पृ. 366*
24. *'यदायद्योरूपसङ्ख्यानम्।' लृटोऽपवादः। जातुयद्यदा यदि वा त्वादृशो हरिं निन्देन्नावकल्पयामि न मर्षयामि। लिङ् प्राग्वत्। सि. कौ. पृ. 2891*
25. *'जातु यत् अन्योः प्रयोगे अनवक्लृप्त्यमर्षयोर्लिङ् स्यादित्यर्थः। यदिति विभक्ति प्रतिरूपकमव्ययम्। 'अनवक्लृप्त्यमर्षयोरकिंवृत्तेऽपीति लिङ्लृटौ प्राप्तौ लिङेवत्यर्थकिदम्। तदाह – लृटोऽपवाद इति। यदायद्यो। प्रयोगऽपि उक्तविषये लिङ् उपसङ्ख्यानमित्यर्थः। त्वादृशो हरिं निन्देदित्येतन्नावकल्पयामि, न मर्षयामि वेत्यन्वयः। नावकल्पयामीत्यस्य न सम्भावयामीत्यर्थः।' बा. म., पृ. 370*
26. *'लृटोऽपवादः इति। अनवक्लृप्त्यादि सूत्रेण लिडलृटोद्वेयोरपि प्राप्तयोर्लिङेव यथा स्यात्, लृण्मा भूदित्येवमर्थ इत्यर्थः।' प. म. पृ. 507*
27. *'यच्च यत्रा वा त्वमेवं कुर्याः न श्रद्धे न मर्षयामि।' सि. कौ. पृ. 289*
28. *अनवक्लृप्त्य' मर्षयोरिति वर्त्तते। यथासङ्ख्यमिह नेष्यते। अयमपि लिङ्लृटोरपवादः। योगविभागस्तु उत्तरसूत्रद्वये यच्चयत्रायोरेवाऽनुवृत्तिर्यथा स्यादित्यदर्थः। क्रियातिपत्तौ लिङ् प्राग्वत्। यच्च यत्रा वा त्वमेवमकरिष्यो न श्रद्धे न मर्षयामि। त. बो. पृ. 370*
29. *'अयमपि लृङपवादः योगविभाग उत्तराऽनयोरेवानुवृत्त्यर्थः। लिङ् प्राग्वत्।' ल. श. शे. पृ. 370*
30. *'यच्च यत्रा वा त्वं शूद्रं याजयेः, आश्चर्यमेतत्।' सि. कौ., पृ. 289*
31. *त. बो. प्र. 370*
32. *'यच्च भवान् वेदविद्यां निन्देत्, यत्र भवान् वेदविद्यां निन्देत्, आश्चर्यमेतत् बुद्धिमान् सज्जनेऽपि सन् अ. भा. प्र. पृ. 482*
33. *'बाढमित्यर्थेऽनयोस्तुल्यार्थता। उत अपि वा हन्यादधं हरिः। समर्थयोः किम् उत दण्डः पतिष्यति। अपिधस्यति द्वारम्। प्रश्नः प्रच्छादनं च गम्यते। इतः प्रभृति लिङ्*

निमित्ते क्रियातिपत्तौ भूतेऽपि नित्ये लिङ्।' सि. कौ., पृ. 290

34. *समौ अर्थौ ययोरिति विग्रहः। शकन्ध्वदित्वात्पररूपम्। एकार्थयोरित्यर्थः कमर्थमादायानयोरेकार्थकत्वमित्यत् आह–बाढमिति। तथा च बाढार्थकयोः उत अपि इत्यनयोः प्रयोगे लिङ् स्यान्न तु लकारान्तरमित्यर्थः। उत हन्याद्घं, अपि हन्यादधं, अपि हन्यादधं हरिः इति अन्वयः। 'उताऽपि' बाढमित्यर्थकौ। गम्यते इति। उत दण्डः पतिष्यतीत्यत्रा उतशब्देन प्रश्नो गम्यते। अपिधस्यति द्वारमित्यत्रा अपिना धातोः प्रच्छादनार्थकत्वं गम्यत इत्यर्थः इतः प्रभृतीति। बाताप्योरिति मर्यादायाम् आङ्। उताप्योरितियतप्राग्भूते लिङ् निमित्ते लिङ् वेत्यधिक्रियते। उताप्योरित्यादि सूत्रेषु भूते 'लिङनिमित्ते लिङ्क्रियातिपतौ' इत्येवाधिक्रियते इत्युक्तम्। एवं च उताप्योरिति सूत्र प्रभृति लिङ् निमित्ते क्रियातिपत्तौ भूते लृङित्येवाधिक्रियते, न तु वा ग्रहणमतो नित्यमेवाऽत्र विषये क्रियातिपत्तौ भूते भविष्यति लृङित्यर्थः।' बा. म. पृ. 371*
35. *'स्वाभिप्रायाविष्करणे गम्यमाने लिङ्स्यान्न तु कच्चिति। कामो मे भुंजीत भवान्। अकच्चितीति किम्? सि. कौ. पृ. 290*
36. *'सर्वलापवादः अकच्चितीत्यस्य कच्चिच्छब्दप्रयोगाऽभावे इत्यर्थः। तदाह–नत्विति। कच्चिज्जीवतीति। अयं प्रश्न एव कामप्रवेदन द्योतक इति भावः। कच्चिच्छब्दस्येच्छार्थकत्वाऽभावात् इच्छार्थेषु इत्यप्यत्र न प्रवर्त्तते।' ल. श. शे. पृ. 371*
37. *'स्वाभिप्रायाविष्करणं कामप्रवेदनं इति। एतदेवावयवार्थप्रकाशनेनोपपादयतिकाम इच्छा इति। 'माराविदत्वां पृच्छामि' इति। माराविशब्दं ददातीति माराविदः। संज्ञेषा शुकविशेषस्य, तं हस्ते निधाय कश्चिल्लालयति।' प. म. पृ. 508*
38. *पूर्वसूत्रमनुवर्तते। सम्भावनेऽर्थे। धतावुपपदे उक्तेऽर्थे लिङ् वा स्यान्न तु यच्छब्दे। पूर्वेण नित्ये प्राप्ते वचनम् सम्भावयामि भुंजीत भोक्ष्यते वा भवान्। अयदि किम्? संभावयामि यद्भुंजीथास्त्वम्।' सि. कौ., पृ. 290*
39. *'अयदीति छेदः। तदाहन्त तु यदिति। लिङ्भावे लृट्। संभावयामीति। प्रयोगग भोक्तुं समर्थ इत्यर्थः। 'संभावयामि भुंजीत भवान्' इत। भोजने भवान् शक्त इत्युत्प्रेक्षा इत्यर्थः। प. म. पृ. 509*
40. *'वा स्यात्। कृष्णं नमेच्चेत्सुखं यायात्। कृष्णं नंस्यति चेत् सुखं यास्यति। वार्तिक – 'भविष्यत्येवेष्यते। नेह हन्तीति पलायते। सि. कौ., पृ. 290*
41. *'विभाषेत्यस्याऽनुवर्तनादाह– वा स्यादिति। नमेच्चेदिति कृष्णनति सुखप्राप्तौ हेतुः। भविष्यत्येवेतिलिङित्यनुवर्तमाने पुनर्लिङग्रहणं कालविशेषप्रतिपत्यर्थमिति भावः हन्तीत्यादि। ननु लक्षणहेत्वोः क्रियायाः' इति हन्तेः शतृप्रत्ययः स्यात्।' त. बा. पृ. 372*
42. *'लक्षणहेत्वोः क्रियायाः' अष्टा. सू., पृ. 3–2–126*
43. *'इच्छामि भुंजीत, भुङ्क्त्वा वा भवान्। एवं कामये प्रार्थये इत्यादियोगे बोध्यम्। वार्तिक 'कामप्रवेदन इति वक्तव्यम्।– नेह इच्छन् करोति।' सि. कौ., पृ. 290*
44. *'कामप्रवेदन इति वक्तव्यम्' इति कामप्रवेदने अकाच्चिति ;3–3–153 इत्ययं तर्हि योगः किमर्थः यावता कामो मे भुंजीत भवान्, अभिलाषो मे भुंजीत भवानित्यत्राप्यननेनैव सिद्धम् यत्रोच्छार्थम् उपपदं न भवति, अर्थप्रेरणादिना तु कामप्रवेदनं गम्यते, तत्राापि लिङ् यथा स्यात्। इदं तर्हि किम् अर्थम् लोडर्थम्, लिङ्ग्रहणं तु लोटा–बाध मा भूदिति।' प. म., पृ. 510*
45. *'सर्वदाऽपवादः लिङ् प्राग्वत्। इच्छार्थे उपपदे इति सूत्रार्थः। कामप्रवेदनं स्वाभिप्रायाविष्करणम्। तच्च प्रयोक्तुः इति बोध्यम्। इदं न स्वतंत्रां विधायकं किन्तु सूत्रशेषभूतमन्यव्यावर्तकमेव। अतो व्यावर्त्यमेव दर्शयति। नेहेच्छान्निति।' ल.श.शे., पृ. 372*
46. *'लिङ् स्यात्। पक्षे लट्। इच्छेत इच्छति। कामयेत। कामयते।' सि. कौ. पृ. 290*
47. *'लिङित्येवानुवर्त्तते। समानकर्तृकेषिति तु निवृत्तम्। तत् सूचयन्नुदाहरति – इच्छेत् इच्छतीति। विधिनिमन्त्रणेति भूधातौ व्याख्यातम् अपि सूत्रक्रमप्राप्तत्वात् स्मारितम्। एवं लोडिति। लोट् चेति विध्यादिषु विहितो लोडप्येवमुदाहर्त्तव्य इत्यर्थः।' बा. म., पृ. 373*
48. *'यच्छब्दे उपपदे कालसमयवेलासु च लिङ् स्यात्। काल, समयो वेला वा यद् भुंजीत भवान्।' सि. कौ., पृ. 291*
49. *कालसमयवेलास्वित्यनुवर्तते। यद् भवान् भुंजीत तस्य काल इत्युदाहरणार्थः। भावे परत्त्वात्तुमुनमयं बाध्ते। सर्वलापवादोऽयम्।' ल.श. शे, पृ. 374*
50. *'शक्तौ लिङ् स्यात्। चात्कृत्याः। त्र भारं वहेः। माङि लुघ्। मा कार्षी, कथं मा भवतु। मा भविष्यतीति? नायं माङ् किन्तु 'मा' शब्दः।' सि. कौ., पृ. 291*
51. *'शक् इति भावे क्विबन्तम्। शक्तौ गम्यमानायामित्यर्थः। भारं त्वं वहेरिति। बोढुं शक्त इत्यर्थः। ननु सर्वलकारापवादोऽयमित्युक्तम्, एवं सति मा भवतु मा भविष्यतीति कथमिति शङ्क्यते। परिहरति नायं माडिति। किंत्विति। ङकारानुबन्धविनिर्मुक्तस्यापि अव्ययेषु पाठादिति भावः।' बा.म.,पृ. 374*
52. *'भावे क्विप्। शक्तौ गम्यमानायामित्यर्थः सर्वलापवादत्वाच्छङ्कते कथा*
53. *सि.कौ., पृ. 189*
54. *'ननु विध्यादि सूत्र एव संप्रश्नप्रार्थनाशीःषित्युच्यतां किमनेन पृथक् सूत्रकरणेनेति चेत्। अत्राहुः इह हि क्तिच्क्तौ चेत्युत्तरसूत्रार्थमाशिषीति तावदावश्यकम् लिङ् लोटावपीहैव विधौ, विध्यादिसूत्रे आशीग्रहणे हि स्मे लोडित्यादिना स्वविषये परत्वाद् बाध स्यात्। सिद्धान्ते तु परत्वादेष विधिः स्मे लोडित्यादेर्बाध्क इति महान्विशेष इति।' त. बो., पृ. 21*
55. *'विध्यादि सूत्र एवाशीर्ग्रहणं न कृतम्, स्मे लोट् ;3–3–165 इत्यादि विषयेऽपि परत्वादेष विधिः यथा स्यादिति। अवश्यं चोत्तरार्थमिहाशीर्ग्रहणं कर्त्तव्यम्। प.म., पृ. 514*
56. *ल.श.शे., पृ. 21*
57. *पा.अ. 3.3.161*
58. *वै.भू. पृ.–72*
59. *वै.भू. पृ. 192*
60. *पा.अ . 3.4.7, 3.4.6*
61. *प.ल.म, पृ. 253*